International Journal of Sanskrit Research 2016; 2(2): 48-50

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2016; 2(2): 48-50
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 20-01-2016
Accepted: 22-02-2016

उमेश पौडेल
(शोधच्छात्र) संस्कृत विभाग, जम्मू वि॰वि॰ जम्मू व कश्मीर (180006)

Correspondence
उमेश पौडेल
(शोधच्छात्र) संस्कृत विभाग, जम्मू वि॰वि॰ जम्मू व कश्मीर (180006)

वाल्मीकि–रामायण का काव्य–सौन्दर्य

उमेश पौडेल

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का जीवन न केवल भारतवर्ष के लिए अपितु सम्पूर्ण मानव–जाति के लिए अक्षय प्रेरणा–स्रोत हैं एवं वाल्मीकि–रामायण समस्त काव्यगुणों का आकर, विश्व साहित्य का अमर–कोश, संस्कृति का उज्ज्वल दीपक तथा कोटि–कोटि भारतीयों का प्राण है। आदि–कवि ने इस आर्श महाकाव्य में एक ओर वैदिक संस्कृति के उत्तमोत्तम चित्र अंकित किये हैं, तो दूसरी ओर कला और सौन्दर्य की ऐसी मन्दाकिनी प्रवाहित की है कि सहृदय पाठक इस सौन्दर्य सरिता में अवागहन कर आनन्द विभोर हो जाता है।

वाल्मीकि–रामायण काव्य की दृष्टि से ही नहीं अपितु साहित्य, इतिहास, लोक–संस्कृति और ललितकलाओं के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष स्रोतों की गरिमा से अन्वित विश्व का महनीय ग्रन्थ है। रामायण ने भारत तथा विदेशों में कला, संस्कृति और जीवन को सर्वाधिक प्रभावित किया है। यह सत्य है कि कवि का मुख्य उद्देश्य सरस एवं उपदेशात्मक काव्य की रचना करना है, किन्तु उस काव्य–रचना में तत्कालीन समाज में जो कलाएँ, विशेषतः ललितकलाएँ, प्रचलित थीं उनका वर्णन करना भी वाल्मीकि को अभीष्ट था तभी तो उन्होंने यथा–स्थान, यथा–समाज यथा–प्रसंग इनका विशद निरूपण किया है। रामायण की रचना करते हुए, वास्तुपद विन्यास की चर्चा करते हुए, लव–कुश को संगीत की शिक्षा देते हुए, सीता की भावनामयी मूर्ति को प्रतिमाबद्ध करते हुए तथा विभिन्न चित्रकर्म का निर्देश करते हुए वाल्मीकि स्वयं एक महान् कलाकार सिद्ध होते हैं। कलाकार का सम्बन्ध समाज से होता है और कोई भी कला विना सामाजिक प्रभाव के पनप नहीं सकती तथा किसी भी समाज का प्रभाव उस काल की कला पर पड़े विना नहीं रह सकता।

रामायण–कालीन आर्य कलात्मक अभिरुचि सम्पन्न लोग थे। हम तत्कालीन नगरों को उस युग के कलाकेन्द्र कह सकते हैं, जहां राजाओं की छत्रछाया में सौन्दर्याभिव्यञ्जक ललितकलाएँ पुष्पित एवं पल्लवित होती रहीं। जिन घटनाओं एवं चरित्रों की आदिकवि ने सृष्टि की है वे अपने कला वैशिष्ट्य एवं भाव प्रवणता से ओतप्रोत हैं।

कला

संस्कृति की वाहिका 'कला' शब्द की व्युत्पत्ति भावार्थक घञ् प्रत्ययान्त कल् धातु से हुई है, जिसका अर्थ ऐसी माननीय कलाकृति से है जो स्रष्टा एवं द्रष्टा दोनों को आनन्द प्रदान करें। भारतीय कला एवं सौन्दर्य को जानने के लिए वेद–वेदाङ्ग–पुराण–पुरातत्त्व–रामायण–महाभारत जैसे प्राचीन साहित्य का सहारा लेना पड़ता है। प्राचीन भारत में चौंसठ कलाओं की गणना मुख्यरूपेण वात्स्यायन के द्वारा की गई है। कलान्तर में इन्हीं कलाओं में से कुछ ऐसी कलाओं की गणना पृथक रूप से की जाने लगी, जो मानव–हृदय को अत्यधिक आनन्द की अनुभूति कराती थीं, जिन्हें आधुनिक युग में ललितकला या सुन्दरकला के नाम से जाना जाता है।

रामायण और कला

वाल्मीकि ने रामायण की रचना ब्रह्मा के निर्देश पर की थी और यह सर्वविदित है कि ब्रह्मा सृष्टिकला के रचयिता हैं। अथर्ववेद में 'तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः [1] कह कर देवताओं में ज्येष्ठतम जगत्स्रष्टा ब्रह्मा की व्यापक स्तुति की गई है। कलाओं के जन्मदाता के रूप में ब्रह्मा का वर्णन अनेक शास्त्रों में किसी न किसी रूप में अवश्य हुआ है। सृष्टिनिर्माण के साथ ही कलाएँ भी सम्बद्ध हैं क्योंकि ब्रह्मा की सृष्टि और कला अन्ततोगत्वा एक दूसरे से जुड़ी हुई है। नारद और ब्रह्मा संगीतकला से सम्बन्धित हैं और संगीतकला के जन्मदाता भी माने जाते हैं। रामायण का शुभारम्भ ही नारद और वाल्मीकि के परस्पर आलाप रूपी संगीतकला से होता है। रामायण के विभिन्न प्रसंगों से विदित होता है कि मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के युग में लोक–जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कला के विभिन्न रूपों का प्रचार–प्रसार हो चुका था।

कलाओं का विभाजन

जिन भावों को मनुष्य सीधे प्रकट नहीं कर पाता है उनको समाज के समक्ष कला के विभिन्न रूपों में प्रकट करता है। इस प्रकार वह अपनी मन की इच्छाओं को परितृप्त कर लेता है। मनुष्य के अन्तर्मन से निकलने वाली कला को कलाशास्त्रियों ने उपयोगी कला एवं ललितकला में विभक्त किया है। ललितकलाओं का विभाजन रस तथा भाव–प्रधानता के आधार पर किया गया है।''ललितस्य भावः इति लालित्यम्'' अर्थात् जिसमें अपेक्षाकृत अधिक सौन्दर्य का भाव हो उसे ललित कहा जाता है। आधुनिक कलाशास्त्री ललितकलाओं की श्रेणी में निम्नलिखित पांच कलाओं का उल्लेख करते हैं।

1. काव्य अथवा नाट्यकला,
2. संगीत कला,
3. वास्तुकला अथवा स्थापत्य कला,
4. मूर्तिकला तथा
5. चित्रकला।

काव्यकला

आदि कवि वाल्मीकि के समक्ष अपनी काव्य सर्जना के प्रेरणा स्रोत के रूप में वेदों में निहित काव्यतत्त्व थे। ''रामादिवत् प्रवर्तितव्यं न रावणादिवत्'' इस संदेश की वाहिनी उनकी अमर कृति रामायण में हमें लौकिक काव्य का प्रथम रूप प्राप्त होता है। रामायण काव्यग्रन्थ है, अतः सौन्दर्य का वर्णन ही कवि का उद्देश्य रहा है, सौन्दर्य विवेचन उनका विषय नहीं है तथापि विषय वर्णन से कवि की सौन्दर्य–चेतना एवं तद्विषयक विचारों का परिचय निश्चय ही मिल जाता है। [2]

वाल्मीकि रामायण का काव्यकला–पक्ष उदात्त है। रामायण की भाषा अत्यन्त सरल, सरस, प्राञ्जल, उदात्त, मनोहरी, प्रसाद गुण सम्पन्न और अलंकृत तथा रमणीय है। कवि ने समस्त काव्यगुणों से समन्वित, रसान्वित काव्यशैली द्वारा रामायण को परवर्ती आचार्यों के लिए भी प्रेरणा–स्रोत बनाया है। काव्य–तत्व विवेचन के प्रसंग में रामायण में तीन श्लोक अत्यन्त प्रसिद्ध हैं–

पाठ्येगेये च मधुरं प्रमाणैस्त्रिभिरन्वितम्।
जातिभिः सप्तभिर्युक्तं तन्त्रीलयसमन्वितम्।।
रसैः शृंगारकरुणहास्यरौद्रभयानकैः।
वीरादिभिरसैयुक्तं काव्यमेतद् गायताम्। [3]
पादबद्धोऽक्षरसमस्तन्त्रीलयसमन्वितः।
शोकार्त्तस्य प्रवृतो मे श्लोको भवतु नान्यथा।। [4]

अर्थात् रामायण (महाकाव्य) पढ़ने और गाने में भी मधुर, द्रुत, मध्य और विलम्बित इन तीनों गतियों से अन्वित, ऋषभ, षड्ज आदि सातों स्वरों से युक्त, वीणा बजाकर स्वर और तालके साथ गाने योग्य तथा शृंगार, करुण, हास्य, रौद्र, भयानक तथा वीर आदि सभी रसों से अनुप्राणित है। इस प्रकार (दोनों भाई लवकुश) सम्पूर्ण काव्यगुणों से युक्त रामायण महाकाव्य का गान करने लगे।

रस

काव्य–शास्त्रियों ने रस को काव्य की आत्मा माना है, अन्य समस्त काव्यांग रीति, गुण, अलंकार, ध्वनि आदि अंग रूप होकर रस का उत्कर्ष बढ़ाने वाने माने गये हैं। यद्यपि विभिन्न आचार्यों ने अलंकार, ध्वनि आदि तत्त्वों की महत्ता प्रतिपादित की है, तथापि किसी भी आचार्य ने रस की उपेक्षा नहीं की है। विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। [5] ऐसा कहकर आचार्य–भरत ने आठ रसों को प्रतिपादित किया है तथापि उससे पूर्व ही वाल्मीकि ने रामायण के बालकाण्ड में इन्हीं रसों का उल्लेख किया था। [6] वैसे तो रामायण में यथावसर, यथास्थान सभी रसों को अभिव्यक्ति मिली है, तथापि शोक स्थायी भाव वाले करुण और उत्साह स्थायी भाव वाले वीररस दोनों को समुचित प्रधानता मिली है। आदिकवि ने महाकाव्य का प्रेरणा स्रोत करुण रस को माना है। तमसा तट पर विचरण करते हुए महर्षि ने व्याध द्वारा कामासक्त क्रौञ्चयुगल में से एक का निर्मम वध होते हुए देखा तो उनके शोकाकुल हृदय से ही मानो यह श्लोक फूट पड़ा था–

''मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समा।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।। [7]

अर्थात हे निषाद! तुझे नित्य निरन्तर कभी भी शांति न मिले क्योंकि तूने इस क्रौडच के जोड़े में से एक की, जो काम से मोहित हो रहा था, बिना किसी अपराध के ही हत्या कर डाली।

वत्सल नामक स्थायी भाव से युक्त वात्सल्य रस होता है। इसमें वात्सल्य स्नेह स्थायी भाव होता है। पुत्रादि इसका आलम्बन विभाव होते हैं। उसकी चेष्टा, विद्या शूरता, दया आदि उद्दीपन विभाव होते हैं। आलिंगन, अंगस्पर्श, सिर चूमना, देखना, रोमांच, आनन्दाश्रु आदि इसके अनुभाव होते हैं। अनिष्ट की आंशका, हर्ष, गर्व आदि संचारी भाव होते हैं। [8] रामायाण में बालकाण्ड में यह रस प्रचुर मात्रा में दिखाई देता है। जब विश्वामित्र यज्ञ–रक्षा के लिए राम को ले जाना चाहते हैं। यह सुनकर महाराज दशरथ मूर्च्छित हो जाते हैं और होश आने पर राम को उनके साथ भेजने के लिए इंकार कर देते हैं। [9] यहाँ दशरथ का राम के प्रति वात्सल्य रस अभिव्यक्त हो रहा है। एवमेव राम के राज्याभिषेक के अवसर पर राम को एकटक देखने, छाती से लगाने [10] आदि वर्णन में वात्सल्य रस दर्शनीय है। इस प्रकार स्पष्ट है कि वाल्मीकि रामायण में करूण 'अंगीरस' है तथा अन्य रस इस के सहायक सिद्ध हुए हैं।

अलंकार

भारतीय काव्य–शास्त्रीय मान्यता के अनुसार काव्य में सौन्दर्य की अनुभूति दो प्रकार से होती है एक तो अलंकारों द्वारा, दूसरे रस के समायोजन द्वारा। अलंकारों का वैविध्य वाग्वैचित्र्य के कारण होता है। [11] भामह प्रभृति परवर्ती आचार्यों ने काव्य में जिस अलंकार नामक तत्त्व को अनिवार्य रूप से सम्मिलित किया उसी को पुराकाल में महर्षि वाल्मीकि ने सहज रूप से काव्य में प्रयुक्त किया था। काव्य की आत्मा भावपक्ष होती है तथा शरीर आदि कलापक्ष होता है। इन दोनों का सहज सम्बन्ध है। इसी संबंध की पृष्ठभूमि में काव्य द्वारा अलंकारों की विवेचना उल्लेखनीय है। रामायण में वाल्मीकि ने सादृश्यमूलक अलंकारों का ही प्रधानरूप से विनियोग किया है। उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकार अधिकाधिक प्रयुक्त हुए हैं। उपमा यथा–

रविसङ्क्रान्तसौभाग्यस्तुषारावृतमण्डलः।
निश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते।। [12]

अर्थात् जिसका (चन्द्रमा) सौभाग्य रवि में संक्रान्त हो चुका है, जिसका मण्डल तुषार से ढक गया है ऐसा चन्द्रमा निःश्वास वायु से मलिन दर्पण की भांति शोभित नहीं हो रहा है। जब बिना कारण के कार्य की उत्पत्ति का कथन होता है तब विभावना अलंकार होता है। जैसे अयोध्याकाण्ड में चित्रकूट में मिलने पर सीता को वनवास का कष्ट भोगती देखकर माता कौसल्या का कथन है–

वैदेहराजन्यसुता स्नुषा दशरथस्य च।
रामपत्नी कथं दुःखं सम्प्राप्ता विजने जने।। [13]

विदेहराज जनक की पुत्री, राजा दशरथ की पुत्रवधू तथा श्रीराम की पत्नी इस निर्जन वन में क्यों दुःख भोग रही है। अर्थात् बिना कारण ही दुःख भोग रही है। अतः यहाँ विभावना अलंकार है।

यद्यपि आदिकवि ने उपमाओं का प्रभूत मात्रा में प्रयोग किया है तथापि इस काव्य में अनन्वय, [14] रूपक, उत्पेक्षा, निदर्शना आदि अलंकारों के उदाहरण भी प्राप्त होते हैं।

छन्द

सम अक्षर से युक्त अनुष्टुप् छन्द 'मा निषाद्' इत्यादि का लौकिक संस्कृत में सर्वप्रथम व्यवहार तब हुआ था, जब वाल्मीकि ने व्याध के बाण से क्रौंचवध देखा था। वैदिक छन्दों का अनुसरण करते हुए महर्षि ने रामायण को आद्योपान्त प्रायशः अनुष्टुप् छन्द द्वारा आच्छादित किया है। तद्यथा–

"तपः स्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां परम्।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवम्।।" [15]

आदिकवि होने के नाते वाल्मीकि ने ही परवर्ती आचार्यों को महाकाव्य के सर्गान्त में छन्द को परिवर्तित करने की दृष्टि दी। युद्धकाण्ड के सतहत्तरवें सर्ग की समाप्ति पर छन्द परिवर्तन करते हुए महर्षि ने भुजङ्गप्रयात [16] का प्रयोग किया है। स्पष्टतः रामायण में प्रयुक्त विविध छन्दों के द्वारा विदित होता है कि यह आदिकाव्य लवकुश परम्परा से अद्यावधि, काव्यीय सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं।

नाट्यसंधि– विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा हेतु उपस्थित राम को मारीच एवं सुबाहु के द्वारा ज्ञात होता है कि अनुष्ठान में विघ्न डालने हेतु उन दोनों को रावण ने प्रेरित किया। रावण का अस्तित्व एक समस्या के रूप में उभरता है और यहीं कथा का संकेत द्वारा बीज भी निक्षिप्त हो जाता है। राम ही रावण की समस्या के एकमात्र समाधान हो सकते हैं, यही कथा का बीजन्यास है जिसका फलागम रामायण के अन्त में रावण वध के रूप में सामने आता है। इस प्रकार वाल्मीकि ने नाट्यविधि–अनुसार संबन्धियों को प्रयुक्त कर काव्य की सुन्दरता बढ़ाई है।

वस्तुतः काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से वाल्मीकि रामायण का अवलोकन किया जाये तो आन्तरिक नाना भावों तथा रसों की अभिव्यंजना में यहाँ जितना काव्य सौन्दर्य उभरता है उतना ही इसमे बाह्य प्रकृति–चित्रणो तथा काव्यों–बिम्बों में भी काव्य सौन्दर्य स्फुटित होता है। काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से यदि केवल "सुन्दरकाण्ड" का ही अवलोकन किया जाए तो वहाँ उसकी एक सर्ग में पूर्ण अभिव्यक्ति की अनुभूति हो जाती है। वहाँ प्रकृति का वर्णन तो एक अन्य ही स्फुरत्ता से द्योतित है और सीता का वह कारुणिक स्वरूप आदिकवि की लेखनी से अद्भूत चमत्कार के रूप में प्रस्तुतः हुआ है। अतः वाल्मीकि की यह उक्ति सत्य है–

"यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावते रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति।" [17]

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. अथर्व – 10.7. 32–34
2. भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका, डॉ. नगेन्द्र. पृ. 46
3. वा.रा.बा.का.सर्ग–4 श्लोक 8–9
4. वा.रा.बा.का.सर्ग–2–श्लोक 18
5. विभावानुभावसंचारीसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः। ना०शा० 6–32
6. रसैःश्रृंगारकरूणहास्यरौद्रभयानकैः।
   वीरादिभिश्च संयुक्तं काव्यमेदगायताम्। वा०रा० बा०का, सर्ग–4, श्लोक–8–9
7. वा.रा.बा.का.सर्ग 2, श्लोक 15
8. स्फुट चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः।
   स्थायी वत्सलतास्नेहः पुत्राद्यालम्बनं मतम्।।
   उद्दीपनानि तच्चेष्टा विद्याशौर्यदयादयः।
   आलिंगनांगसंस्पर्शशिरचुम्बनमीक्षणम्।।
   पुलकानन्दबाष्पाद्या अनुभावाः प्रकीर्तिताः।
   संचारिणोऽनिष्टशंकाहर्षगर्वादयो मताः।। सा० द०परि०3, का 251–253
9. वा०रा०बा०का, सर्ग–19, श्लोक–20–22
10. वा०रा० अयो०का, सर्ग–3, श्लोक–26–27
11. संस्कृत–वाङ्मय का बृहद् इतिहास, खण्ड–3, पृ० 86, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान।
12. वा.रा. अयो.का, सर्ग–16, श्लोक–13
13. वा०रा० अयो०का, सर्ग–104, श्लोक–24।
14. गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः।
   रामरावणयोर्युद्धं रावरावणयोरिव।। वा0रा0यु0का0 सर्ग–107, श्लोक–51
15. वा०रा० बा०का, सर्ग–1,श्लोक–1।
16. व्यपेते तु जीवे निकुम्भस्य हृष्टा–वा.रा.यु.का. सर्ग 77, श्लोक, 24
17. वा०रा० बा०का, सर्ग–2, श्लोक–36–37